प्रकाशित: 12 जुलाई 2018 को नेशनलिस्ट ऑनलाइन पर प्रकाशित -

अलग मजहबी मुल्क की मांग करने वालों को पाकिस्तान से शरण देने की गुहार लगानी चाहिए !

शिवानन्द द्विवेदी

आये दिन किसी न किसी भाजपा नेता, खासकर गिरिराज सिंह, का हवाला देते हुए राष्ट्रवादियों पर यह आरोप लगता है कि इन्होंने पाकिस्तान भेजने का ठेका ले रखा है। 'पाकिस्तान चले जाएँ' का प्रयोग जितना हिदायत के नाते भाजपाइयों ने नहीं किया उससे ज्यादा प्रयोग तो उनसे असहमत होने वालों ने इसे विक्टिम कार्ड के रूप में किया है। मसलन, अकसर देखने को मिलता है कि एक वर्ग यह लिखकर सहानुभूति बटोरने की कोशिश करता है कि हम अमुक मुद्दे पर सरकार से सहमत नहीं हैं तो क्या पाकिस्तान चले जाएँ! हालांकि अभीतक किसी के पाकिस्तान जाने अथवा भेजे जाने की पुख्ता जानकारी नहीं है।

इस पूरे मामले को तार्किकता की कसौटी पर देखें तो चर्चा में रहने वाले "पाकिस्तान चले जाएँ' जुमले की कहानी उतनी सपाट नहीं नजर आती, जितनी दिखती है। पाकिस्तान के अस्तित्व की बुनियाद से वर्तमान तक की यात्रा के बाद आज जब हम देखते हैं तो पाकिस्तान भारत के लिए महज एक पड़ोसी देश भर नहीं नजर आता, बल्कि इसे एक सैद्धांतिक अवधारणा के रूप में भी समझना चाहिए। भारत के ही एक हिस्से से किन शर्तों पर टूटकर एक नया देश आकार ले लेता है, इसे भी समझना जरुरी है।

पाकिस्तान सिर्फ मुल्क नहीं बल्कि बंटवारे की एक मजहबी अवधारणा है। वह इतिहास में दर्ज एक उदाहरण भी है जो आज भी किसी न किसी रूप में मजहबी चरमपंथियों द्वारा दोहराने की मंशा से सर उठा लेता है। देश को इस अवधारणा से भी लड़ने की जरूरत है। यह समझना आज इसलिए भी जरूरी है क्योंकि डिप्टी ग्रैंड मुफ्ती नासिर उल इस्लाम ने एकबार शरिया अदालतों के बहाने अलग देश की मांग को हवा दे दी है। देश तोड़ने वाली उठ रही इस मांग को गंभीरता से लेने और इसके भावी खतरों को समझने की जरूरत है।

इतिहास से सबक लें तो पाकिस्तान के निर्माण की कहानी भी ऐसी ही मांगों से उठी थी। माना जाता है कि सबसे पहले एक नए देश के सन्दर्भ में 'पाकिस्तान' शब्द का प्रयोग 1933 में रहमत अली ने एक प्रकाशित हुए पर्चे में रखा था। आगे चलकर 1940 में

मुस्लिम लीग ने लाहौर अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर दिया जिसमें भारत से अलग करके एक मुस्लिम देश के रूप में पाकिस्तान बनाने की मांग रखी गयी थी।

उस दौरान इसे कुछ लोगों ने गंभीरता से नहीं लिया था। उस दौरान मुस्लिम लीग द्वारा रखी गयी मांग को वर्तमान के डिप्टी ग्रैंड मुफ़्ती के बयान से जोड़कर देखने पर बेशक कुछ लोगों को यह अतिरंजना लगे, लेकिन इस मांग के भावी खतरों से अनजान बनकर सोना आँख मूंदकर अँधेरा महसूस करने जैसा ही है।

पंथनिरपेक्षता के आदर्शलोक में कुछ लोग 1933 और 1940 में भी इसे महज राजनीतिक ख्याल मानकर चुप्पी साधे थे और कुछ लोग आज भी वैसी ही चुप्पी साधे हैं। यह चुप्पी भी खतरनाक है। उस दौर में भी मांग मजहबी आधार पर एक नए देश की थी। आज भी मांग मजहबी आधार पर नए देश की है। यह कहना कि शरिया नहीं तो हमें अलग देश दे दो, एक नए मुस्लिम देश की मांग करना है। चूँकि, इस मांग पर आज से सात दशक पूर्व एक बंटवारा हो चुका है। वह एक सशर्त बंटवारा था। जिन शर्तों पर वह बंटवारा हुआ, उन्हीं शर्तों पर एक नए देश की मांग फिर से उस पुराने खतरे की आहट पैदा करने वाली है।

सैद्धांतिक और व्यवहारिक दोनों दृष्टिकोण से देखा जाए तो नए देश की मांग का आधार मजहबी है। **ऐसे में अगर किसी को मजहब के आधार पर नए देश की जरूरत महसूस हो रही है, तो उन्हें उन स्थितियों के आधार पर पाकिस्तान से खुद को शरण देने की गुहार लगानी चाहिए।** देश हर पचास वर्ष में ऐसी मजहबी मांगों के लिए बंटता रहे, यह भला राष्ट्र के लिए कैसे स्वीकार्य होगा ?

ऐसे में अगर गिरिराज सिंह सहित अन्य कुछ नेताओं द्वारा 'पाकिस्तान चले जाएँ' जैसे बयानों को देखें तो वे इतने अप्रासंगिक नहीं लगते। क्योंकि पाकिस्तान की स्थापना इसी मांग के आधार पर हुई थी कि उन्हें अपना मजहबी मुल्क चाहिए था। वे लोग जो मजहबी आधार पर अपना अलग भू-क्षेत्र मांग रहे थे, उन्हें तब मिला। लेकिन साजिशन आज फिर वही मांग दोहराई जा रही है। ऐसी मांग करने वालों के लिए सत्तर साल पहले के इतिहास की ओर देखना चाहिए और खुद के लिए उसी देश में जगह तलाशनी चाहिए, जो उनकी मजहबी मान्यताओं के आधार पर भारत से पहले ही अलग हो चुका है।

(लेखक डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन में रिसर्च फेलो हैं और नेशनलिस्ट ऑनलाइन के संपादक हैं।)